जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ६५ अंक - ९
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

भाद्रपद-आश्विन : सम्वत् २०७६ वि०
सितम्बर – २०१९

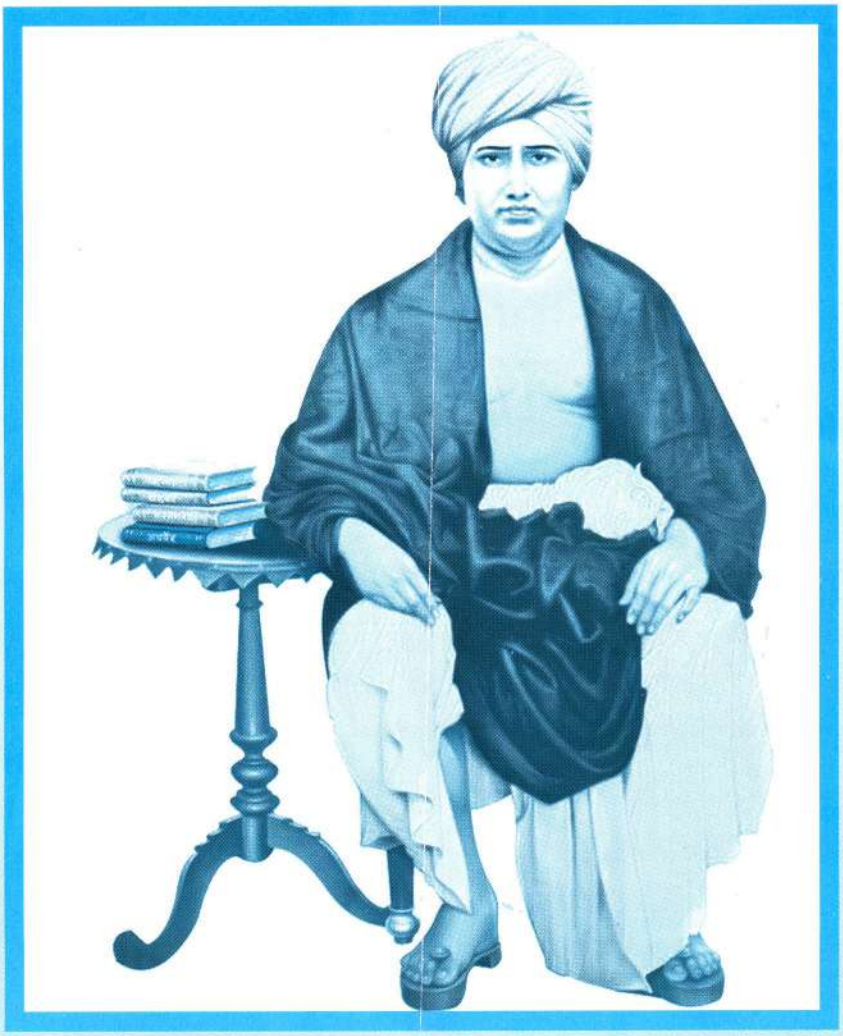

महर्षि दयानन्द सरस्वती

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

१. श्रावणी पर्व एवं वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज कलकत्ता द्वारा श्रावणी पूर्णिमा से श्रीकृष्णजन्माष्टमी पर्यन्त तदनुसार १५ अगस्त से २३ अगस्त २०१९ पर्यन्त श्रावणी पर्व एवं वेद प्रचार सप्ताह मनाया गया । इस अवसर पर आर्य समाज मन्दिर में प्रात: ७ बजे से ९.३० बजे तक अथर्ववेद पारायण यज्ञ आचार्य डा० वेदपाल जी (मेरठ) के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। ऋत्विकगण के रूप में वेदपाठ कर रहे थे पं० आत्मानन्द शास्त्री, पं० नचिकेता भट्टाचार्य, पं० देवनारायण तिवारी, पं० वेद प्रकाश शास्त्री, पं० कृष्ण देव शास्त्री, पं० योगेश राज उपाध्याय एंव पं० अर्चना शास्त्री । यज्ञ के उपरान्त आचार्य डॉ० वेदपाल जी ने विभिन्न जीवनोपयोगी विषयों पर आध्यात्मिक उपदेश प्रस्तुत किये ।

सायं काल प्रतिदिन ७.३० बजे से ९ बजे तक पं० अपूर्व देव शर्मा द्वारा भजन एवं आचार्य डॉ० वेदपाल जी द्वारा **'वेद कथा'** प्रस्तुत किया गया ।

२. वेद संगोष्ठी

दिनांक १७ अगस्त, २०१९, शनिवार को सायं ७ बजे ९ बजे तक **'वेदों में मानवीय मूल्य'** विषय पर आर्यसमाज कलकत्ता के सभागार में वेद संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें पं० बंगाल के विभिन्न विश्वविद्यालयों के संस्कृत-विभाग के वेद-विषय के प्राध्यापकों ने अपने विचार प्रस्तुत किये । यह संगोष्ठी आचार्य डॉ० वेदपाल (मेरठ) जी की अध्यक्षता में हुयी। अन्य वक्तागण थे- प्रो० रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्य (रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय), प्रो० प्रतापचन्द्र राय (सिधो-कानो-बिरसा विश्वविद्यालय, पुरुलिया), प्रो० त्रिदिप सरकार (बाँकुड़ा विश्वविद्यालय), प्रो० हरिदास सरकार (कूचविहार विश्वविद्यालय) । कार्यक्रम का कुशलतापूर्वक संचालन किया पं० योगेशराज उपाध्याय जी ने । इस संगोष्ठी के आयोजन में श्री सत्यप्रकाश जायसवाल जी ने विशिष्ट भूमिका निभाई ।

३. योगेश्वर श्रीकृष्ण जन्म-जयन्ती

२३ अगस्त २०१९ को सायंकाल ७ बजे से ९ बजे तक आर्य समाज मन्दिर के सभागार में आचार्य डा० वेदपाल जी की अध्यक्षता में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी की जन्म जयन्ती मनायी गयी। इसमें पं० अपूर्व देव शर्मा जी के भजन के अतिरिक्त आर्य समाज कलकत्ता के पूर्व प्रधान श्री श्रीराम आर्य व पं० देवनारायण तिवारी जी ने श्रीकृष्ण जी के आदर्श व अनुकरणीय जीवन पर प्रकाश डाला ।

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ६५ अंक — ९
भाद्रपद-आश्विन - २०७६ वि०
दयानन्दाब्द - १९५
सृष्टि सं॰- १,९६,०८,५३,१२०
सितम्बर - २०१९

आद्य सम्पादक
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय
(स्मृति शेष)

●

सम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल

सहयोगी संपादक :
श्री सत्यप्रकाश जायसवाल
पं० योगेशराज उपाध्याय

●

शुल्क : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

इस अंक की प्रस्तुति

१. इस अंक की प्रस्तुति		३
२. आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ		२
३. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे (१३)	- वेद-वन्दन से	४
४. स्वामी जी का स्वकथित जीवन-चरित्र	- पं॰ लेखराम द्वारा संकलित	१५
५. सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा (महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश का काव्य भावानुवाद)	- पं॰ देवनारायण तिवारी	१७
६. क्या भारत को धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र ही रहना चाहिए या धर्म-सापेक्ष हिन्दू राष्ट्र (आर्य राष्ट्र) होना चाहिए (एक चिन्तन)	- कामता प्रसाद मिश्र	१९
७. यज्ञ शेष से शक्ति और शान्ति पावें	- डा० अशोक आर्य	२२
८. गायत्री महामन्त्र	- पं० वेद प्रकाश शास्त्री	२५
९. ''ईश्वर है एक नाम अनेक''	- खुशहाल चन्द्र आर्य	२६

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

दूरभाष : २२४१-३४३९ *email : aryasamajkolkata@gmail.com*

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

१३.

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे

यह सृष्टि, इसकी गतिविधि, इसकी प्रकृति और प्रवृत्ति, सभी आश्चर्य पैदा करती हैं । चेतन जड़ सब की कार्य प्रणाली पर विचार करने पर आश्चर्य ही आश्चर्य होता है । शिशु २८० दिन माता के गर्भ में रहता है । विधिपूर्वक, नियमानुसार, उसके शरीर का निर्माण, निश्चित मात्रा, निश्चित अनुपात में होता रहता है । मस्तिष्क और हृदय जैसे जटिल संयन्त्र, आँख, कान, पाचन आदि संयन्त्रों का विकास होता रहता है । क्या आश्चर्य है गर्भ में न खाना, न पीना, न टट्टी, न पेशाब, न बोलना न सुनना, परमेश्वर ने माता के गर्भ में कोई आजमाइश (Trial), परीक्षण कुछ भी तो नहीं किया । बस सीधा ही क्रियाक्षेत्र में उतार दिया -

'आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनं,
आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः ।' गीता २-२९

इस सारे क्रियाकलाप को कोई आश्चर्य से देखता है, कोई आश्चर्य चकित होकर इसका वर्णन करता है । चेतन जगत् के क्रिया कलाप, व्यवहार, प्रवृत्ति में समानता देखकर निर्माता की सृष्टि कला के सम्मुख भक्ति से मस्तक नत हो जाता है ।

फिर भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जो संसार को एक तुक, संयोग (chance), दुर्घटना (accident) कहने में बौद्धिक गर्व का अनुभव करते हैं । कोई अपने को वैज्ञानिक, तो कोई स्वयं को वैज्ञानिक भौतिकवादी कहता है ।

यह तो है चेतन जगत की हलकी सी कहानी । जड़ जगत का क्रियाकलाप, प्रवृत्ति, गुणधर्म कम आश्चर्यजनक नहीं है । अग्नि का ऊपर उठना, जल का नीचे बहना, हवा का प्राण बाँटते चलना, सूर्य, चन्द्र, ग्रहों, उपग्रहों की निश्चित नियमित गति, विज्ञान के लाखों निश्चित नियम, H_2O का पानी बनना, ऊर्जा का $E=MC^2$ नियम, ऐसे ही असंख्य नियम देख-समझकर भक्त, गर्व में नही, भक्ति में विह्वल हो उठता है —

'यह गर्व भरा मस्तक मेरा, प्रभु चरण धूलि तक झुकने दो ।'

यह तो रही आस्तिकों की भावना, प्रभु-भक्तों का भक्ति भाव—

'पर्णः पर्णः सूचकस्तद् विधातुः,
पुष्पे पुष्पे विद्यते धातृ सत्ता ।'

दूसरे शब्दों में —

'तेरी सत्ता के बिना, हे प्रभु मंगल मूल,
पत्ता तक हिलता नही, खिले न कोई फूल ।'

किन्तु नास्तिकों का वक्तव्य अलग है । वे कहते हैं कि यह सृष्टि है, 'अभाव से भाव' की उत्पत्ति का एक रूप है । ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (मं० १० सूक्त १२९) में बड़ा सुन्दर प्रसंग उठाया गया है । छठें मंत्र में प्यारे प्रश्नों की माला सी पिरोयी गयी है —

'को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः'

प्र० १- इयं विसृष्टिः कुत आ जाता ? - यह विविध प्रकार की सृष्टि, यह चित्र-विचित्र सृष्टि कहाँ से उत्पन्न हुई है ?

प्र०२- को अद्धा वेद ? - इसको भलीभाँति कौन जानता है ?

प्र०३- कः इह प्रवोचत् ? - कौन इस संबंध में बता सकता है ?

नासदीय सूक्त का प्रथम मंत्र प्रश्न को और भी प्राञ्जल-सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत कर रहा है —

'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ।'

यह मंत्र सृष्टि से पूर्व की परिस्थिति का वर्णन करता है —

१-उस समय न सत् था, न असत् था ।

२-उस समय रजः परमाणु या (रजांसि लोकाः) लोक लोकान्तर भी नहीं थे ।

३-लोकों के परे व्योम, आकाश भी नहीं था ।

४-किसी का कोई शर्मन् घर भोग आवरण कुछ भी नहीं था ।

५-तब कोई गहन गम्भीर अम्भः समुद्र भी नहीं था ।

जब कुछ भी नहीं था तो यह सृष्टिः-विसृष्टि विचित्र विविध प्रकार की सृष्टि कहाँ से आ गयी ?

इयं विसृष्टिः कुत आजाता ?

इस महान प्रश्न का उत्तर हमारे प्रस्तुत मंत्र में उपस्थित है —

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥' — यजु० १३-४

मंत्र को भली भाँति समझने के लिए इसे निम्नलिखित खण्डों में विभाजित कर लेना सुविधाजनक रहेगा —

१-हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे ।

२-(सः हिरण्यगर्भः) भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

३-सः (हिरण्यगर्भः) दाधार पृथिवीं, द्याम्, उत इमाम् ।

४-कस्मै देवाय हविषा विधेम ।

अब एक-एक खण्ड पर विचार करते हैं -

१-हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे - अग्रे, सृष्टि के उत्पन्न होने से पूर्व हिरण्यगर्भ परमेश्वर सम्यक् रूप से वर्तमान थे । हम देख आये हैं कि सृष्टि से पूर्व न सत् था, न असत् था, लोक लोकान्तर भी नहीं थे, परामणु भी नहीं थे । थे तो केवल एक परम प्रभु परमेश्वर जिनके गर्भ में हिरण्य पलता है । प्रलयकाल में सत्त्व, रज, तम अ-साम्यावस्था में सृजन सामर्थ्य को उपलब्ध करने के लिए परम प्रभु के गर्भ में पलते रहते हैं ।

मां के गर्भ म बीज रूप शिशु का निर्माण होता है । वह गर्भ में निर्मित होता है, पलता है, विकसित होता है, इस संसार में जन्म लेता है, गर्भ में ही अपेक्षित उपकरण से सुसज्जित होकर जीवन क्षेत्र में आता है ।

इसी प्रकार प्रकृति अपनी असाम्यावस्था में हिरण्यगर्भ परमेश्वर की व्यवस्था और नियमों में संसार-सृजन के लिए पर्याप्त अपेक्षित उपकरण सामर्थ्य उपलब्ध करके अपनी साम्यावस्था में उत्पन्न होकर सृष्टि निर्माण की प्रक्रिया के लिए प्रस्तुत हो जाती है और सृष्टिकार्य अग्रसर हो उठता है ।

यह है एक दार्शनिक, कठिन, बुद्धिविलास की प्रक्रिया । यह मंत्र सामान्य रूप मे 'ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना' के रूप में सामने आता है । अतः इसकी व्याख्या 'भक्ति-भावना-भावित' एवं भाव प्रवण रूप में ही साधारण पाठक के काम की होगी । महर्षि ने संस्कार विधि में 'हिरण्यगर्भः' का अर्थ स्व प्रकाशस्वरूप लिखा है । अपना प्रकाश ही उस प्रभु का स्वरूप है । यह चिन्तन मनन एवं अनुभूति का विषय है और है भी विचार रमणीय ।

शब्द की व्युत्पत्ति एवं प्रकृति की दृष्टि से 'हिरण्यगर्भः' की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है —

१ - हिरण्यानि सूर्यादीनि तेजांसि गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः ।

२ - हिरण्यानां तेजसां सूर्यादीनां यो गर्भोऽधिष्ठानम् स हिरण्यगर्भः ।

जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ, उनको पालने, व्यवस्थित करने वाला और जो सूर्यादि का अधिष्ठान है ।

ये दोनों व्याख्याएं व्याकरण की दृष्टि से समान होती हुई भी दो पृथक् तथ्यों पर प्रकाश डाल रही हैं -

१ - गर्भ में पालन होता है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्स्ले ने The Dying Sun (मरता हुआ-मरणशील सूर्य) नाम से एक प्रबन्ध लिखा था । उनका कहना था कि सूर्य मर रहा है और इस ब्रह्माण्ड में चेतन प्राणियों का उत्पन्न होना एक दुर्घटना मात्र है - We have stumbled here in this world by chance, by mistake and not by any design or planning. हिरण्यगर्भ इसका इस अनास्था का उत्तर है । सूर्यादि प्रभु के गर्भ में यथोचित सृष्टि-स्थिति-प्रलय के रूप में व्यवस्थित हैं ।

२ - हिरण्यगर्भ सूर्यादि का अधिष्ठान है । न्यूटन के पूर्व वैज्ञानिक इस तथ्य से चकित थे कि सूर्यादि

बिना आधार के कैसे अवकाश Space में टिके हैं । विद्युत्तरंगों के रूप में प्रभु की पालन पद्धति का ज्ञान परवर्ती है। दूसरी व्याख्या इस प्रश्न का समुचित समाधान करती है ।

ये वैज्ञानिक झगड़े-रगड़े विद्वानों में आस्था के सहायक हो सकते हैं किन्तु सीधा सरल भक्त 'हिरण्यगर्भः' की निम्न प्रस्तुति को अपने हृदय के अधिक निकट पायेगा ।

हिरण्यानि तेजांसि गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः - यह व्याख्या तो ठीक ही है । किन्तु हिरण्य का क्या अर्थ है ?

लोक प्रचलित भाषा में हिरण्य का अर्थ है 'स्वर्ण' । इसीलिए कई लोग जो वैदिक शब्दों की प्रयोग पद्धति से पूर्ण रूप से परिचित नहीं हैं, वे कहते हैं कि ये (हिरण्यगर्भः) आदि मंत्र नवीन हैं । ये मंत्र उस युग के हैं, जब धातु विज्ञान और खनिज ऐतिह्य में स्वर्ण का प्रयोग होने लगा था । उनको क्या पता कि वेद संहिता में शब्द यौगिक हैं यहाँ प्रायः सभी खनिजों का वर्णन उपलब्ध है । स्वर्ण अर्थ में हिरण्य यौगरूढ़ि है और वैदिक साहित्य में हिरण्य के निम्न प्रयोग हमारी व्याख्या के लिए उपयोगी लग रहे हैं —

१ - यशो वै हिरण्यम् (ऐत० ब्राह्मण)

२ - ज्योतिर्वै हिरण्यम्, ज्योतिरेषोऽमृतं हिरण्यम् (शत०ब्रा०)

३ - रेतः हिरण्यम् (तै० ३-८-२-४)

४ - हिरण्यम् कस्मात् ? हितरमणम्-हितरमणीयं भवतीति वा, हृदयरमणम्-हृदय रमणीयं भवतीति वा । (निरु० २-३-२)

यश, ज्योति, तेज, रेत (वीर्य, शुक्र) सभी को हिरण्य, हितरमणीय, हृदय रमणीय कहते हैं ।

गर्भ का प्रयोग दो प्रकार से देखा जाता है । एक माता का गर्भ तो प्रसिद्ध है ही । इस गर्भ में शिशु का निर्माण-पालन-पोषण, सब कुछ होता रहता है । दूसरे आचार्य का गर्भ है । अथर्ववेद का मंत्र है -

'आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः' —अथर्व० ११-५-१

मनुष्य का यश, तेज, ज्योति, चमक, ब्रह्मचर्य सब प्रभु के गर्भ में उनकी व्यवस्था और छत्रछाया में पलते हैं । यशस्वी के यश, तेजस्वी के तेज, ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य, ज्योतिष्मान् की ज्योति को मिटाने वाले बहुत होते हैं । किन्तु जिसने प्रभु कृपा का कवच धारण कर लिया है, उसके यश की रक्षा प्रभु की कृपा से स्वतः हो जाती है । हृदय रमणीयता की दृष्टि से महर्षि जीवन की एक घटना का उल्लेख उपयोगी है -

मथुरा नगरी, मुरलीधर, बंशीधर, गोपी-राधा-रास लीला की मिथ्या पौराणिक मान्यता से प्रभावित नगरी में कालजिह्व, आदित्य ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यान हो रहे थे । ऋषि का उग्र खण्डन सुनकर मथुरा की भक्तमण्डली तिलमिला उठी थी । पण्डे पुजारी ईर्ष्या द्वेष से जलने लगे —

द्वन्द्वी देखते थे द्वलद्वेष द्वन्द्वियों के उसे,
दिव्य दृष्टियों को दीख पड़ता निर्द्वन्द्व था ।
प्रबल प्रचण्ड पाखण्ड खण्ड-खण्ड करिबे को बज्र,
गौरव गुमान गुण गरिमा गयन्द था ।

सो जैसा प्रचण्ड पाखण्ड, उससे कहीं बढ़-चढ़कर प्रचण्ड खण्डन-कुठार का प्रहार । यदि पण्डे पुजारियों में विद्या होती, यदि वे सत्य पर आरूढ़ होते तो ऋषि से शास्त्रार्थ करते, तर्क का उत्तर तर्क से देते, प्रमाणों का उत्तर प्रमाणों से देते । यहां तो पण्डे पुजारियों के पास विद्या नहीं, तर्क नहीं, प्रमाण नहीं । थी ईर्ष्या, था द्वेष, था छल प्रपञ्च । तो आदित्य ब्रह्मचारी के विमल-धवल-निर्मल चरित्र को, उनकी साधना, उनके पावन पवित्र यश को कलङ्कित करने के लिए एक वेश्या को पण्डे पुजारियों ने पटाया। शरीर का व्यवसाय करने वाली को साड़ियां, आभूषण, रुपये मिल रहे थे । राजी हो गई ऋषि को बदनाम करने के लिए । सजधज कर, बन ठन कर, चल पड़ी ऋषि की कुटिया की ओर । पण्डे पुजारी कुटिया के पास कुछ दूर पर बैठे हैं । प्रतीक्षा कर रहे हैं कि वेश्या कुटी के अन्दर जाये, हल्ला करे और ये टूट पड़ें और आदित्य ब्रह्मचारी को वेश्या बुलाने की बदनामी का शिकार बना लें ।

वेश्या गई, कुटी का द्वार खुला था । आदित्य ब्रह्मचारी ध्यान में समाधिस्थ थे । कुन्दन-काया, ब्रह्मचर्य से उद्दीप्त मुख-मण्डल, जगज्जननी का वत्स, हिरण्यगर्भ के आँचल में सौम्य भाव से भरपूर, मोहिनी मूरति, सुहानी सूरति, प्रभु का वत्स, सौम्य वत्सलता से दमक रहा था ।

वेश्या अभिभूत हो गयी । आभा मण्डल का विकरण उसे और भी अधिक विगलित कर गया, महर्षि की कुन्दन काया पर परमप्रभु की कृपा का कवच था । वेश्या के हृदय में भाव उठे - कैसा निर्मल पवित्र सश्ल साधु है ? तू इसे क्यों बदनाम करे, आगे ही तूने बहुत पाप किये हैं, अब और मत कर ।

वेश्या सामने बैठ गयी । आभूषण उतार-उतार कर ढ़ेर लगा दिया। ऋषि की समाधि टूटी, ऋषि की आँख खुली, कृपाकोर बरस पड़ी, आँखों में करुणा की डोर लहरा उठी । होंठ खुले-आवाज आयी, 'मां । कैसे आई हो ?' वेश्या का हृदय फट पड़ा, फफक-फफक कर आंसू चूने लगे । महान् ऋषि भक्त, सहृदय कवि, लेखनी के जादूगर पं० चमूपति जी के पद का आनन्द लीजिए —

'माई ! क्या लाई इस साधु के डेरे ?'
'कुछ नहीं साधु, मेरे पाप हैं घनेरे !'
वेश्या पुनः बिलख पड़ी —
'मैं आई थी पाप की पोट लिए, यश गंग में पोट पछार लियो ।
चिरकाल चरित्र के दर्पन में निज चित्र भी आप निहार लियो ।
मैंने देखी चरित्र की आज दया, ऋषि राज उठा पतवार लियो ।
मैं डूबी, डुबाने को आई जिसे, उसने ही मुझे भव पार कियो ।।'

बदनाम करने की भावना वाले देखते ही रह गये। योगी साधु का यश अक्षय सुरक्षित रहा। यश प्रभु के गर्भ में पलता है।

महात्मा मुंशीराम पर मानहानि का अभियोग एक पौराणिक नेता ने चलाया। महात्मा जी को प्रमाणों का बंडल कोई पीछे से पकड़ा गया और महात्मा जी के यश की रक्षा हो गयी। अपने गर्भ मे स्थित यश रूपी शिशु की रक्षा प्रभु ने की।

हिरण्यगर्भ का एक और रूप देखिए। व्यक्ति परोपकार करता है उसने दुःखिया का दुःख दूर किया, अन्धे को रास्ता दिखाया, कोई पुण्य कार्य किया, ऐसे परोपकारी के चेहरे पर तेज चमक उठता है। यह तेज, यह ज्योति, प्रभु के गर्भ से खुराक पाती है। सदाचारी ने ब्रह्मचर्य का व्रत किया, प्रभु की कृपा का कवच उसके व्रत की रक्षा करता रहा। शरीर तेजस्वी हो उठा, मुखमण्डल पर ओज-तेज का वैभव दमकने लगा। यह सब हिरण्य की आभा हिरण्यगर्भ के गर्भ में पलती है।

हिरण्य का एक अर्थ 'हिरण्यरमणीय', 'हृदयरमण' भी निरुक्त में दिया है। कोई संगीत वाद्य में रमण करता है। कोई नृत्य अभिनय में रमण करता है। कोई निन्दा में, कोई चापलूसी में, कोई जुआ-शराब में भी रमण करता है। किन्तु प्रभु के ध्यान में रमण हितकारी है। शराब का नशा तो उतर जाता है किन्तु भक्ति का मद तो चढ़ा ही रहता है -गुरुनानक देव की वाणी में-

'मारा नशा शराब का, उतरि जात परभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहै दिन रात॥'

सामवेद का निम्न मंत्र प्रभु के पवित्र रमणीय मद का बड़ा प्यारा वर्णन कर रहा है —

'यस्ते मदोवरेण्यस्तेना पवस्तान्धसा।
देवावीरघशंसहा॥' साम० ४७०।

प्रभु का मद वरणीय है। प्रभु का मद पाप-प्रशंसा को हनन करनेवाला है-अघशंसहा है। यह है हिरण्यगर्भ की हित-रमणीयता, हृदय रमणीयता का एक रूप है।

सो जगदीश्वर हिरण्यगर्भ के गर्भ में ज्योति का, अमृत का, यश का, ईमान, सत्यनिष्ठा, चरित्र सब का पालन संरक्षण होता है।

यह तो प्रथम खण्ड 'हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे' का चिन्तन हुआ। मंत्र का द्वितीय खण्ड है —

२. (सः हिरण्यगर्भः) भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् -'

हिरण्य गर्भ पूर्व से, सृष्टि उत्पन्न होने के पूर्व से वर्तमान हैं। और भूतपति के रूप मे हैं। भूत मात्र के पति पालक हैं। 'भूतस्य जातः भूतपतिः' का एक रूप तो बना कि सृष्टि से पूर्व, प्रलयावस्था में महाभूत, तन्मात्र, अहंकार और महत्तत्त्व से भी पूर्व, सत्व, रज, तम की 'अ-साम्यावस्था' में जब न सत् था, न असत् था, न रजांसि (परमाणु-या लोक), कुछ भी नहीं था। किन्तु प्रकृति की अ-साम्यावस्था में

उसे सर्जनोन्मुख होने के लिए समर्थ बनाना था । यह 'अग्रे वर्तमान भूतपति' के पालन का स्वरूप है।

बात को समझने के लिए एक निजी कल्पना कर रहा हूँ । मानव श्रान्त-क्लान्त सामर्थ्य क्षीण होकर सुषुप्ति में लीन होकर कार्य सम्पादन का सामर्थ्य प्राप्त करता है । प्रगाढ़ निद्रा, श्वासों का आना जाना, परिपूर्णतः शान्त अवस्था, कुछ काल के पश्चात् मनुष्य को क्रियाशीलता के सामर्थ्य से सम्पन्न कर देता है । यह क्रियाशीलता-सामर्थ्य-सम्पादन की पद्धति technique, process मनुष्य का चिन्तन, मानव का कृतित्व या आविष्कार नहीं है । श्रान्त, क्लान्त, कार्य करने में असमर्थ प्राणी को विश्राम शयन के प्रावधान से प्रभु प्राणी को कार्य करने का सामर्थ्य प्रदान करते हैं-

यह निष्क्रिय-शान्त-अवस्था से क्रियाशीलता के सामर्थ्य का सम्पादन प्रभु की, हिरण्यगर्भ की, सर्जनात्मक व्यवस्था है । यही बात श्रान्त-क्लान्त, घिसी-पिटी, ब्राह्मदिन भर क्रियाशील सृष्टि की भी है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' । जो कुछ, जैसा हमारे पिण्ड में, शरीर में होता है, वैसा ही वैश्वानर प्रभु के पिण्ड, ब्रह्माण्ड में घटित होता है । हम दिन भर काम करके रात को शान्त होकर, निष्क्रिय होकर, शयन करते हैं और क्रियाशीलता के सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं । सृष्टि भी प्रलयकाल में शान्त-निष्क्रिय होकर प्रभु की व्यवस्था से सर्जन सामर्थ्य प्राप्त करती है । यह सर्जन सामर्थ्य वही उपलब्ध करा सकता है जो पहले से इस व्यवस्था technique, process का स्वामी हो । तभी 'भूतपतिः समवर्तताग्रे' बुद्धिगम्य होता है । सृष्टि के आरम्भ में प्रकृति शक्ति से परिपूर्ण होती है। धरती अकृष्टपच्या - बिना जोते बोये भी पर्याप्त खाद्य देती है । हवा पानी स्वच्छ प्रदूषणरहित होते हैं । वनों में फल कन्द मूल सुलभ होते हैं । तरुमूल में निवास, मुनि अन्न (बिना कृषि के) सुलभ रहता है । सृष्टि के अन्त में श्रान्त-क्लान्त निर्बल प्रकृति, प्रदूषित जलवायु, निर्बल अन्न, कन्दमूल फल आदि दुर्लभ, निर्बल पशु प्राणी, प्रभु प्रलय की निशा में पालन करके सामर्थ्य सम्पन्न करते हैं । यह भूतपति का पतित्व, पालनहार की पालना विचित्र है, भक्त-रमणीय है ।

यह भूतपति का रूप सृष्टि से पूर्व, प्रलयकाल में हुआ । किन्तु सृष्टि की अवस्था में भी प्रभु का पालक स्वरूप अतितराम् भक्त रमणीय है ।

जगदीश्वर के गर्भ में, उसकी व्यवस्था में, उसकी छत्रछाया में, पालन होता है । पालन-पोषण—रक्षण-नियमन होता है-ज्योति का, प्रतिभा का, यश का, ईमान, सत्य निष्ठा का, चरित्र-प्रतिष्ठा का । प्रायः सभी महापुरुषों को, सुधारकों, धर्म प्रचारकों को गाली मिलती है, उन पर धूल और पत्थर बरसाये जाते हैं । किन्तु सूर्य का प्रचण्ड तपन, मरीचिमाली का तेज मेघमाला छिन्न-भिन्न हो जाती है । बादल छंट जाते हैं, भुवन भास्कर का तेज प्रकट होता है, वह स्व भास्कर ही नहीं, भुवन भास्कर भी है। उसका तेज अपने लिए नहीं, संसार के लिए हैं । उसका यश, उसकी सत्यनिष्ठा, उसका चरित्र विश्व के कल्याण के लिए है । तभी तो विश्वपति, भूतपति, स्वयं उसे अपने गर्भ में, अपनी व्यवस्था म, अपनी देख-रेख में स्वयम् पालते हैं।

शिशु के उत्पन्न होने के साथ ही माता के स्तनों में दूध का आ जाना, माता का दूध शिशु का सर्वोत्तम पोषण, अन्न पचने की क्षमता होने पर दांतों का निकलना, वृद्धावस्था में पाचन निर्बल होने पर

दांतों का चला जाना, थोड़े खाद्य में निर्वाह होना, यह सब प्रभु की ही व्यवस्था तो है -

'जब दांत न थे, तब दूध दियो,
जब दांत दियो, तब अन्न न दैहैं !'

यह है प्रभु के पालन के प्रति समर्पित निष्ठा । जल में, थल में, गगन-पवन में, सागर की उत्ताल तरंगों में, अग्नि शिखा और प्रस्तर खण्ड में, सर्वत्र प्राणी पल रहे हैं । उन्हें उनका अन्न प्राण वहीं मिल रहा है । पालनहार की विश्वव्यापी पालन पद्धति का एक प्यारा कथानक भक्तों में प्रचलित है —

छत्रपति शिवाजी के किसी दुर्ग की मरम्मत हो रही थी । हजारों-हजार व्यक्ति रोजी-रोटी कमा रहे थे । शाम का समय था । मजदूरी बंट रही थी । छत्रपति शिवाजी निरीक्षण करने आये थे । मजदूरों को देखा, बंटती मजदूरी को देखा । मानव सुलभ अहंकार ने शिवाजी के हृदय में प्रवेश किया । मन में भाव आया-'हजारों को रोटी मेरी व्यवस्था में मिल रही है । अभिमान मुखमण्डल पर झलक आया । शिवाजी के गुरुजी समर्थ गुरु रामदास वहीं थे । शिष्य के चेहरे पर उभरी अहंकार की रेखाएं गुरु की पैनी दृष्टि से छिप न सकीं । गुरुजी ने बड़े सहज भाव से गुरु की हितबुद्धि से कहा, 'शिवा !' सामने वह पत्थर का टुकड़ा पड़ा है, जरा उठाओ तो ।' शिवाजी ने सहज भाव से, पत्थर उठा लिया । गुरुजी ने उसे तोड़ने को कहा । शिवाजी ने पत्थर को तोड़ भी दिया । देखा-हजारों चींटियां मुंह में अपना खाद्य लिए चल रही हैं । गुरुजी ने मर्मभरी दृष्टि से शिवाजी को देखा -'इन चींटियों को भोजन कौन देता है?' शिवाजी ने अपनी भूल का अनुभव किया । गुरुजी के चरण पकड़ लिए । बोध हुआ--भगवान् हाथी से चींटी तक, कीटपंतग, जलचर-नभचर, सबका पालनहार है । वह भूतपति है, जगत्पति है, जड़-चेतन, चर-अचर, सभी उसकी प्रजा है । वह सबका स्वामी है, सबका पालनहार है ।

प्रभु सूर्यादि ग्रह उपग्रहों का भी पालन करता है । उन्हें नियमों में चलाता है । हमने प्रसिद्ध वैज्ञानिक हक्सले और उसके निबंध 'मरणशील सूर्य' की चर्चा ऊपर की है । हक्सले का कहना है कि सूर्य मर रहा है और एक समय आयेगा जब उष्णता के अभाव में सारे जीवधारी मर जायेंगे - There will be universal death because of Scarcity of Heat (The Sun is Dying.)

आस्तिक बुद्धि प्रलय पर विश्वास करती है । किन्तु वह भी प्रभु की व्यवस्था में पालन की ही एक प्रक्रिया का अंश है । यह विश्व-मृत्यु Universal death नहीं, अपितु, प्रलयकाल सृष्टि सम्पादन के लिए सामर्थ्य सञ्चय का काल है ।

इस प्रकार भूतपति का पतित्व, पालनहार की पालन व्यवस्था का सम्पादन, सृष्टि-स्थिति-प्रलय तीनों समयों में सम्यक् रूप से सदा सर्वदा अनवरत चलता ही रहता है । ग्रह-उपग्रह, जड़-चेतन, सभी उसके पालन के पात्र है ।

मन्त्र का तीसरा खण्ड है —

३ - स दाधार पृथिवीं द्याम् उत इमाम् -

जगदीश्वर पृथ्वी, द्यौलोक और अन्तरिक्ष लोक को धारण कर रहे हैं। इमाम् का अर्थ है इसको और भाव है 'अन्तरिक्ष लोक'। ब्रह्माण्ड के पृथ्वी, द्यौ और अन्तरिक्ष तीन भाग हैं। पृथ्वी और द्यौ का तो नाम ही ले लिया। अब बचा अन्तरिक्ष, सो इमाम् से अन्तरिक्ष का ग्रहण कर रहे हैं। इस प्रकार प्रभु, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौलोक को धारण कर रहे हैं।

अब थोड़ा विचार 'दाधार' 'धारण करना' पर करते हैं। संस्कृत का धातु है 'डुधाञ् धारणपोषणयोः'। इस प्रकार सः दाधार का दो अर्थ बना -

(१) वह भूतपति परमेश्वर पृथ्वीलोक, अन्तरिक्ष लोक, और द्यौ लोक को धारण करता है।

(२) परमेश्वर तीनों लोकों का पालन पोषण करता है ? पालन पोषण पर कुछ विचार हम भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् के प्रसंग मे कर चुके हैं।

अब थोड़ा विचार धारण पर करते हैं —

(१) धारण का एक प्रयोग है - हम वस्त्र धारण करते हैं, हम आभूषण धारण करते हैं। पृथ्वी प्राणियों को अपने ऊपर धारण करती है। मनुस्मृति में 'यथा सर्वाणि भूतानि धराधारयते समम्।' ९-३११।

(२) 'धर्मो धारयति प्रजाः' - धर्म प्रजाओं को धारण करता है। धर्म प्रजाओं को नियमों में, व्यवस्था में स्थिर रखता है। नियम व्यवस्था आदि से संबंधित है।

(३) वाण्येका समलं करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते-पुरुष संस्कृता वाणी को धारण करता है, अर्थात् पुरुष को संस्कृत वाणी पर अधिकार है वाणी उस पुरुष के वश में है. उसके अभीष्ट के अनुसार प्रयुक्त होती है।

इस प्रकार धारण के सुस्पष्ट अर्थ हुए (१) धारण करना (२) व्यवस्था में रखना (३) अधिकार में रखकर उपयोग करना।

परमेश्वर ग्रह-उपग्रह, लोक-लोकान्तर सबको अपनी व्यवस्था में रखते हैं। सृष्टि के नियमों के अनुसार चलाते हैं। आइन्सटीन से पूर्व के वैज्ञानिकों के लिए ब्रह्माण्ड का सञ्चरण, सम्भरण, संस्थिति सभी अद्भुत समस्याएं थीं। प्रभु के नियम उनका धारण, व्यवस्थापन, संचालन करते रहते हैं। गुरुकुल, विद्यालय, फैक्ट्री-मिल, सरकार समाज सभी नियमों पर ही चलते हैं। उसी प्रकार हिरण्यगर्भ परमेश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को, उसके एक-एक अंश को, अपने अधिकार में रखकर उसका संचालन कर रहे हैं।

(४) कस्मैदेवाय हविषा विधेम -

कस्मै = सुखस्वरूपाय, सो अर्थ हुआ, हम सुखस्वरूप हिरण्यगर्भ प्रभु के लिए अपनी हवि अर्पित करें।

यहां 'कस्मैदेवाय' को लेकर एक विवाद है। कई पश्चिमी विद्वान् कस्मैदेवाय (?) 'किस देव के लिए' ऐसा प्रश्नवाची अर्थ करते हैं। कस्मैदेवाय कई मंत्रों में पठित है। कस्मै किम् का चतुर्थी विभक्ति में एकवचन का रूप है। लौकिक संस्कृत में तो कस्मैदेवाय का सीधा ही अर्थ है 'किस देव के लिए।'

इन मंत्रों को देखकर ही कई योरुपीय विद्वानों ने निर्णय कर लिया कि वैदिक ऋषियों को ईश्वर तत्त्व का ज्ञान नहीं था । किन्तु यह अर्थ तो सन्दर्भ से पुष्ट नहीं होता । मंत्र में परमेश्वर के निम्न विशेषण उपस्थित हैं-(१) हिरण्यगर्भ (२) पूर्व से उपस्थित (३) भूतपति (४) पृथ्वी आकाश आदि को धारण कर रहा है । इतने विशेषणों के पश्चात् अज्ञान का प्रश्न ही नहीं है ।

इन विद्वानों की बात तो ऐसे ही बेतुकी है जैसे कोई देवदत्त नामक व्यक्ति के संबंध में कहे कि- (१) ये देवदत्त नामक हैं, (२) कलकत्ता में रहते हैं, (३) कपड़े के व्यवसायी हैं, (४) इनका माल दिल्ली, बम्बई, मद्रास आदि शहरों में बिकता है । पता नहीं यह कौन है ? इतने विशेषणों के पश्चात् कस्मैदेवाय का प्रश्नवाची अर्थ सन्दर्भ-भ्रष्ट है ।

लौकिक प्रयोग से ऊपर उठकर 'कस्मै' के वैदिक प्रयोग का अर्थ वैदिक व्याख्या ग्रंथों में निम्न प्रकार से देखा जाता है ।

१-'कः सुखः' (निरु० १०-२२) सो कस्मै देवाय । सुख स्वरूपाय परमात्मने ।

२-'कः वै प्रजापतिः' (ऐत० ३-२१) सो कस्मैदेवाय का अर्थ हुआ सुखस्वरूप प्रजापति परमपिता परमात्मा के लिए ।

कस्मैदेवाय, सुखस्वरूप, हिरण्यगर्भ प्रजापति के लिए 'हविषा विधेम', 'हविषा भक्तिं विधेम' हवि के द्वारा सच्चिदानन्द स्वरूप की भक्ति करें । हवि तो होती है यज्ञ में आहुति देने की सामग्री, भात, मोदक, घी आदि । प्रभुभक्ति भी तो ब्रह्मयज्ञ है । सामान्य रूप से ब्रह्मयज्ञ सन्ध्योपासन स्वाध्याय को कहते हैं । इस प्रभु भक्ति, ब्रह्मयज्ञ में किस पदार्थ को हवि बनावें, किस पदार्थ की आहुति दें । महर्षि दयानन्द जी ने, परमप्रभु भक्त महर्षि ने, संस्कार विधि में अर्थ दिया है 'हविषा = ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से विधेम = विशेष भक्ति किया करें ।'

इसका अर्थ यह हुआ कि परमात्मा के भक्तिरूपी यज्ञ, ब्रह्मयज्ञ की हवि 'ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम' हैं ।

प्रेम तो है ही प्रभु के अर्पण । जिसके हृदय में प्रभुप्रीति नहीं उसकी भक्ति तो छलना, आत्म-प्रवञ्चना ही है । प्रभु भक्ति के लिए भक्तों में पत्र, पुष्प फल, फूल, दीप आदि लाने का प्रचलन है । यह सब तो भक्ति का बाह्य आडम्बर ही है । वास्तविक पूजा द्रव्य तो प्रभु प्रीति, प्रभु के प्रति समर्पित होना, अपना आपा खोना ही है ।

एक प्रिय भजन की कुछ पंक्तियों पर पाठक विचार करें और प्रभु प्रीति और समर्पण का आनन्द लें -

'देव ! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं ।
पूजा की सामग्री वे प्रभु ! विविध रंग की लाते हैं ॥
कैसे स्तुति करूँ तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं ।

मन के भाव प्रकट करने को, वाणी में चातुर्य नहीं ।।
पूजा और पुजापा प्रभुवर, इसी पुजारिन को समझो ।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो ।।
चरणों में अर्पित है, इसको, चाहो तो स्वीकार करो ।
है यह वस्तु तुम्हारी ही प्रभु, ठुकरा दो या प्यार करो ।।'

केवल प्रेम नहीं 'योगाभ्यास' भी ब्रह्मयज्ञ की हवि है । भगवद् गीता के चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मयज्ञ का एक प्यारा सा स्वरूप अन्य प्रकार से उपलब्ध है । यहां योगाभ्यास को हवि रूप में दिखाया गया है -

'अपाने जुह्वति प्राणं, प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापान गती रुद्ध्वा, प्राणायाम परायणाः ।' — गीता ४/२९

भक्त लोग प्राणायाम परायण होकर अपान में प्राण की और प्राण में अपान की आहुति देते हैं । यहां रेचक, पूरक और कुम्भक तीनों का सुस्पष्ट वर्णन है । प्राण और अपान ये हवि है । इसी प्रकार आत्म संयम, इन्द्रियों विषयों का संयम, सभी ब्रह्मयज्ञ की हवि है —

'श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।' — गीता ४/२६

कई साधक योगी अपनी श्रोत्र आदि इन्द्रियों को हवि बनाकर संयम की अग्नि में आहुति देते हैं और कई दूसरे लोग शब्द आदि इन्द्रियों के विषयों को इन्द्रियों की अग्नि में होम देते है ।

इस प्रकार 'अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाः यमाः' और शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः आदि सम्पूर्ण यम, नियम, प्राणायाम आदि को प्रभु भक्ति का साधन बनाना आवश्यक कर्तव्य है ।

'मगन ईश्वर की भक्ति में अरे मन क्यों नहीं होता ।
पड़ा आलस्य में मूरख, रहेगा कब तलक सोता ।।
विषय और भोग में फंसकर न कर बरबाद जीवन को ।
दमन कर चित्त की वृत्ति लगा ले योग में गोता ।।'

योग में गोता लगाने पर ही प्रभु भक्ति का मार्ग प्रशस्त हो पाता है। सो योगाभ्यास प्रभु भक्ति का साधन, उपकरण है । भक्ति यज्ञ में योगाभ्यास हवि है ।

—साभार: वेद वन्दन

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन वृत्त

अध्याय—१

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म फाल्गुन कृष्ण पक्ष दशमी को गुजरात में सम्वत् १८८१ में हुआ था। पूरे भारतवर्ष में स्वामी जी का जन्म दिवस मनाया जाता है। इसी अवसर पर आर्य समाज कलकत्ता ने निर्णय किया कि पं० लेखराम द्वारा संकलित एवं आर्य महामहोपदेशक कविराज श्री रघुनन्दन सिंह निर्मल द्वारा अनूदित महर्षि स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र धारावाहिक प्रकाशित किया जाय, इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह धारावाहिक जीवन-चरित्र — सम्पादक

(गतांक से आगे)

भागवत और चक्राँकितों पर आक्षेप उन्होंने मुझे सिखलाये थे परन्तु वे स्मरण नहीं रहे। यहाँ के लोग इस कारण से कि गंगा के तट पर रहते हैं और तीर्थ से ही उनका निर्वाह होता है। आर्य समाज में सम्मिलित नहीं हुए यह आशंका थी कि कहीं आजीविका ही न मारी जावे।

गंगाघाट स्थित **टीकाराम स्वामी सनाढ्य ब्राह्मण रामघाट ने वर्णन किया** 'कि ग्रीष्म ऋतु ज्येष्ठ मास, संवत् १९२४ में पहले पहल स्वामी जी यहाँ आये और सात दिन रहकर चले गये। पंडित बालमुकुन्द, पण्डित नन्दराम, पण्डित गोविन्दराम, पण्डित करुणाशंकर तथा पण्डित जानकी प्रसाद आदि सब पण्डित वहाँ जाया करते थे। जो जाता अपनी शंका समाधान करके आता था। गंगा, शालिग्राम तथा पुराण का वह खंडन करते थे, कोई सामने से विरोध न करता था। शालिग्राम पण्डित भी जाया करते थे, उनको सारा वृत्तांत भली भाँति विदित है।

रामघाट में कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ

स्वामी कृष्णेन्द्र से उनका शास्त्रार्थ तीन दिन होता रहा। यह शास्त्रार्थ पहर भर दिन से सायं काल को दीपक जलने तक रहा करता था। यह कृष्णेन्द्र नैयायिक थे। स्वामी जी की जीत हुई। कृष्णेन्द्र कहते थे कि रज्जु का सर्प हो जाता है। स्वामी जी ने कहा कि नहीं केवल वह भय मानता है परन्तु समझने के पश्चात् वह नहीं डरता, वास्तव में वह रज्जु है। ऐसे ही कृष्णेन्द्र ने कहा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामी जी ने कहा कि लक्षण का लक्षण नहीं होता प्रत्युत लक्ष्य का लक्षण होता है।

प्रथम बार मेरी भेंट का साधन - यहाँ पर स्वामी जी एक झोंपड़ी में बैठे हुए थे, मैं उनके आगे से गया। परिचय न होने के कारण मैंने नमोनारायण न की। तत्पश्चात् वहाँ से मैं केशवदेव ब्रह्मचारी के पास जा बैठा। उन्होनें कहा कि एक बड़े महात्मा आये हैं, तुमने नमोनारायण न की। मैंने कहा कि कहाँ हैं ? फिर उसके साथ मैं स्वामी जी के पास गया। स्वामी जी से नमोनारायण हुई। तब उन्होंने कहा कि तू ब्राह्मण है ? मैंने कहा कि हां ब्राह्मण हूँ। कहने लगे कि ब्राह्मण किस बात से होता है ? मैंने कहा कि संध्या-गायत्री करने से। कहने लगे कि तू पढ़ा है ? मैंने कहा कि संध्या तो नहीं, परन्तु गायत्री याद है। मुझे सुनाने के लिए कहा तो मैंने कहा कि गुरु जी ने निषेध किया है कि किसी को न सुनाना। उन्होंने कहा कि संन्यासी ब्राह्मणों का गुरु है, तुम हमारे सामने कहो। ब्रह्मचारी जी ने समर्थन किया तब मैंने गायत्री सुनाई। स्वामी जी ने कहा कि तू अच्छा उच्चारण करता है, ऐसा हमने साधारण लोगों के मुख से कम सुना है। फिर कहने लगे कि तू ठीक ब्राह्मण है, संध्या अग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव

यह भी पढ़ ले । फिर मुझे सन्ध्या लिखवा के सातवें दिन यहाँ से चले गये ।

छः आहुतियों का अग्निहोत्र सिखाया: १५ ऋचाओं का लक्ष्मीसूक्त याद कराया- दूसरी बार यहाँ संवत् १९२८ में मिले । कहने लगे कि तूने संध्या याद की है ? मैंने कहा कि कोई पढ़ाने वाला नहीं है । कहने लगे कि यदि तू पढ़ेगा तो हम रहकर तुझे पढ़ावेंगे । तू हमारी सहायता करेगा तो हम पड़े रहेंगे । इस बार स्वामी जी २१ दिन रहे । पहले दिन उन्होंने हमें अग्निहोत्र कराया जो छः आहुति का है । फिर मुझे एक ही दिन में १५ ऋचा लक्ष्मीसूक्त की कण्ठ कराई थी और फिर करुणाशंकर ब्राह्मण को बुलवाकर पंचमहायज्ञविधि लिखवाई । दिन को भी अवकाश के समय और रात्रि को भी पढ़ाते रहे। यहाँ २१ दिन रहकर फिर ठाकुर मुकुन्दसिंह छलेसर वाले की पालकी पर सवार होकर उनके साथ वहाँ चले गये ।

मुझे २१ दिन में संध्या, अग्निहोत्र पढ़ाया और बलिवैश्वदेव की विधि बतलाई । तर्पण और भोजनविधि भी बतलाई थी ।

पहले पहल स्वामी जी से जब मैं मिला तो उस समय मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें थी - आदित्य लहरी, गंगालहरी, गंगाकवच, गंगासहस्त्रनाम, गंगाष्टक, गंगास्तोत्र, विष्णुसहस्त्रनाम, प्रत्यंगिरा स्तोत्र (वाममार्ग का), रुद्री अष्टाध्यायी (वेद की) ।

स्वामी जी ने और तो सब फैंक दिये केवल रुद्री अर्थात् आठ अध्याय वेद के रहने दिये जो विद्यमान हैं और संध्या लिख दी । यहाँ केवल दो बार पधारे (मिले) ।'

पंडित भैरवनाथ, सारस्वत ब्राह्मण अतरौली निवासी ने वर्णन किया 'कि भादों पूर्णमासी, संवत् १९२४ को मैं और पण्डित नन्दराम लखरिया और पण्डित गोविन्दराम हम तीनों गंगास्नान को गये थे। रामघाट बनखंडी पर स्वामी जी हमें मिले तो कुछ प्रश्न राम, कृष्ण के शरीरधारी होने का और शरीर त्यागने के पश्चात् उनकी उपासना व्यर्थ होने पर हुए परन्तु उस समय कोई बात निश्चित न हुई थी । ब्रह्मा की आयु और चतुर्भुज होने पर भी बातचीत हुई थी परन्तु उसका भी निश्चय न हो सका अर्थात् हमने उनकी बात न मानी थी । स्वामी जी ने कहा कि आयु सब की सौ वर्ष की है और वेद में सौ वर्ष की लिखी है । जो सौ से अधिक लाखों वर्ष की कहते हैं वे सब गप्पाष्टक हैं । तीन दिन रहे । उस समय केवल कौपीन और एक चादर गेरुए रंग की थी । उनकी आकृति देखकर बहुत आनन्द होता था । वह उस समय अवधूत संज्ञा में थे । स्वामी जी उस समय महीना या डेढ़ महीना रहे । दूसरी बार हम नहीं गये । स्वामी जी की विद्या में कोई कमी न थी । यद्यपि आजकल विशुद्धानन्द स्वामी बहुत विद्वान् हैं परन्तु उनकी एक और ही बात थी । वह वेदविद्या में अद्वितीय थे । मूर्तिखंडन के अतिरिक्त उनकी कोई बात बुरी न थी । यद्यपि कृष्णेन्द्र से शास्त्रार्थ किया परन्तु वह विद्या में उससे अधिक थे । हमने स्वामी जी का काशी का वृत्तांत सुना है । कृष्णेन्द्र उनकी तुलना में कुछ नहीं था ।'

मुंशी शामलाल, कायस्थ मुख्तार तहसील अतरौली ने वर्णन किया कि मैं भी स्वामी जी से रामघाट में, जब वह बनखण्डेश्वर पर गये हुए थे, मिला था । वह केवल संस्कृत बोलते और एक कौपीन रखते थे । पाठक छुन्नूशंकर ने उनसे कहा कि आप तुलसीपूजन का निषेध करते हैं और स्वयं उसे, रोटी खाने के पश्चात् खाते हैं । स्वामी जी ने कहा कि जैसे मुख शुद्ध करने को पान खाते हैं उस प्रकार खाता हूँ, माहात्म्य समझ कर नहीं खाता । यह छुन्नूशंकर हरजसराय पंडित हाथरस वाले के शिष्य थे । उन्होंने फिर गुरु की प्रशंसा की । स्वामी जी ने कहा 'गुरुसहितेन गंगाप्रवेश : कर्त्तव्यः' अर्थात् गुरु के सहित गंगा में प्रवेश करो, जिसपर वह पूर्णतया निरुत्तर हो गया ।

क्रमशः .....

सत्यार्थ प्रकाश काव्य सुधा

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का काव्य-भावानुवाद

— पं० देवनारायण तिवारी 'निर्भीक'
मो0 : 9830420496

द्वितीय समुल्लासारम्भः

(६)

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

(उपक्रमणिका)

इस भांति से करके बहाना भय दिखाता और भी
झूठा बहाना धन हरण हित धूर्त करता और भी ।
कोई विवेकी जन अगर, उस धूर्त जन को पीटता ।
सब भाग जाता स्वयं सारा ढोंग, बैठा चीखता ।।४९।।

पर लोग तो हैं मूर्ख बहुधा अन्ध विश्वासी घने ।
भय से कलेजा काँपता है, काम यह कैसे बने ।।
कोई पड़ा ग्रह-जाल में, सूर्यादि उसके नेष्ट हैं ।
मरघट-मशान सता रहे, साधन विराट् यथेष्ट हैं ।।५०।।

जब तक रहेगी देश में अज्ञान की काली निशा ।
तब तक भटकता जन रहेगा भूल कर अपनी दिशा ।
यदि मार्ग वेदों का पकड़ ले तो महा कल्याण हो ।
उद्धार होवे जाति का, काया न फिर म्रियमाण हो ।।५१।।

पर हाय ! मानव जाति के दुर्भाग्य में है दुख घने ।।
कल्याण कैसे हो कहो, भ्रम जाल जब इसपर तने ।।
यदि धर्म वैदिक धार ले, तब हो प्रकाश सही-सही ।
रोता फिरेगा अन्यथा, तड़पा करेगी यों मही ।।५३।।

भगवान ! आकर जाति को शुभ पन्थ कुछ दिखलाइये ॥
हे दीनबन्धु दयानिधे, इस देश को समझाइये ॥५४॥

जड़ हैं सभी सूर्यादि ग्रह जैसे कि जड़ है यह मही ।
ये देखते-सुनते नहीं, यह शास्त्र सम्मत है सही ॥
इनके सहज जो धर्म-गुण हैं, तज उसे सकते नहीं ।
ये ताप और प्रकाश से कुछ अधिक दे सकते नहीं ॥५५॥

अनुकूल या प्रतिकूल होना आत्मा का धर्म है ।
जड़ सर्वथा हैं भिन्न वे करते न कोई कर्म हैं ॥
सुख दे न सकते शान्त होकर, या कि दुख कर रोष हैं ।
प्राकृत गुणों से भिन्न इनमें, गुण न कोई दोष हैं ॥५६॥

संसार में राजा-प्रजा जो सुख और दुख पा रहे ।
क्या यह ग्रहों का फल न है? क्यों झुठ सब बतला रहे ?
है झूठ निश्चय ही, न इसमें कुछ ग्रहों का दोष है ।
यह पाप अथवा पुण्य का फल है, कि जो निर्दोष है ॥५७॥

क्या शास्त्र ज्योतिष झूठ है ? नाहक हमें भरमा रहे ।
प्रत्यक्ष को मिथ्या बताकर, क्यों हमें समझा रहे ।
है फलित ज्योतिष झूठ निश्चय, मात्र भ्रम का जाल है ।
है अङ्क, बीज गणित सही, रेखा गणित शुभ माल है ॥५८॥

क्या कुण्डली या जन्मपत्रक भी निफल या झूठ हैं ?
निश्चय न कोई तथ्य उनमें है, सभी भ्रम झूठ हैं ।
उसका तो केवल शोक पत्रक नाम रखना चाहिए ।
उसको किनारे फेंक बस पुरुषार्थ करना चाहिए ॥५९॥

क्रमश : .....

क्या भारत को धर्म निरपेक्ष राष्ट्र ही रहना चाहिए या धर्मसापेक्ष हिन्दू राष्ट्र (आर्य राष्ट्र) होना चाहिए (एक चिन्तन)

—उम्मेद सिंह विशारद

महाभारत काल के बाद महर्षि दयानन्द सरस्वती जी भारत की धरती पर एक देवदूत बनकर आये थे । उन्होंने अपनी दूरदर्शिता, विवेकशीलता से भारत वर्ष को एक वैदिक राष्ट्र, आर्य राष्ट्र बनाने का संकल्प किया धा । अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखते हैं कि कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है । अथवा मत-मतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराये का पक्षपात-शून्य, प्रजा पर पिता-माता के सामान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है । भारत की गुलामी का कारण निजी स्वार्थ व व्यर्थ जाति-पांति, छुआ-छूत, वर्गवाद, राष्ट्रभक्ति की कमी को माना था ।

समय की पुकार है भारत को धर्म सापेक्ष हिन्दू राष्ट्र (आर्य राष्ट्र) घोषित किया जाय

इतिहास गवाह है कि भारत ने किसी अन्य राष्ट्र पर आत्मरक्षा के अतिरिक्त कभी भी आक्रमण नहीं किया है । क्योंकि भारत की संस्कृति, सभ्यता अहिंसावादी रही है । तथा मानवता रक्षक रही है। तथा वेदों से बंधी है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यदि भारत को आर्य राष्ट्र या हिन्दू राष्ट्र घोषित करके संविधान बनाया जाता तो आज की परिस्थिति और ही रहती ।

दुनिया में करीब २०० देश हैं और अधिकांश देश अपने धर्म की मान्यताओं से धर्मसापेक्ष राज्य हैं किन्तु हिन्दू राष्ट्र, नेपाल के अतिरिक्त कोई नहीं है । वहां पर भी अनेक वाद प्रभावी हो रहे हैं । भारत को अदूरदर्शिता या अति भाई बन्दी के कारण धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है । तथा भारत के हिन्दुओं को सदैव के लिये असुरक्षित कर दिया है । हिन्दुस्तान में करोड़ो हिन्दू रहते हैं और सभी का धर्म व संस्कृति एक ही है फिर हम इतने उदार बने हैं कि विधर्मियों को अल्पसंख्यक की सुविधा दे रहे हैं और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाकर अपने ही देश में घुट-घुट कर जी रहे हैं । आर्य समाज राष्ट्रवादी संस्था है, आर्यों को चिन्तन करके अपने राष्ट्र को बचाने में आगे आना पड़ेगा । २२ करोड़ ईसाई व मुसलमानों की संख्या लगभग इस वक्त है । एक शताब्दी के बाद क्या बहुमत की ओर नहीं जायेंगे ! आज सबसे ज्यादा शक्ति व धन सुरक्षा पर व्यय हो रहा है । अपने देश के अन्दर ही राष्ट्र घातक उग्रवादियों को पनाह दे रहे हैं । देश, काल, परिस्थिति के अनुसार हमें पाश्चात्य संस्कृति जो भारत के भावी पीढ़ी को संस्कारहीन कर रही उसके विरुद्ध तथा धर्म निरपेक्ष कानून व व्यवस्था में परिवर्तन की ओर बढ़ना पड़ेगा ।

हिन्दू समाज अनेक फिरकों में व जातियों के वर्गवाद मे बँटा हुआ है । सबकी अपनी-अपनी मान्यताऐं हैं । सभी अपने को एक दूसरे से ऊँचा समझते हैं । प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था थी जो समाज की एक आवश्यकता थी और एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूर्ण करते थे । गुण कर्म के अनुसार वर्ण निर्धारित होता है । यह व्यवस्था समाप्त होने से जाति व उपजातियों की उत्पत्ति अपने मनमाने ढंग से प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा बनती चली गयी । जो आपसी द्वेष का कारण बनती चली गई और हिन्दू समुदाय एक होते हुए भी अनेकता मे बंट गया ।

भेदभाव का उन्मूलन आवश्यक

इस ऊँच नीच जाति-पांति की चिंगारी ने जितना हिंदू समाज को पतन की ओर ढकेला इतना अन्यों ने नहीं ढकेला । हिन्दू समाज में ऊँच नीच वर्ग भेद के कुचक्र से समाजवाद विकास की गति अविरूद्ध हुई है तथा अब भी हो रही है । इस भेदभाव को जड़ से समाप्त करना पड़ेगा । संसार में अनेक मानव प्राणी बसते हैं उनमें केवल क्षेत्र विशेष का ही अन्तर पाया जाता है पर सभी मनुष्य ही कहाते हैं । ईश्वर द्वारा बनाई जातियां जैसे हाथी, घोड़ा, गधा, बैल, पशु, पक्षी आदि जो जन्म से मृत्यु तक एक शरीर में बनी रहती है । ऐसे ही मनुष्य जाति हैं ।

पूर्वाग्रहों में बंध कर सत्य की उपेक्षा न करें

मनुष्यों में पूर्व मान्यताएं व धारणाएं एवं विश्वास, चाहे वे सत्य हों, चाहे वे असत्य हों, एक गहन संस्कार बन जाते हैं । मनुष्य उसके विरोध व अपवाद को अपना स्वाभिमान समझ लेता है तभी शोषित संस्कारों का जन्म होता है । एक प्रकार से मनुष्य पूर्वाग्रहों का दास हो जाता है और प्रत्येक पक्ष में सत्य को स्वीकारने का साहस नहीं कर सकता है । यहाँ असत्य, अन्धविश्वास, जाति-पांति, वर्गभेद के पूर्वाग्रह समाज में विरोधाभास का कारण बनते हैं । सत्य व वैदिक धर्म का पूर्वाग्रही सुख को पाता है और असत्य व अन्धविश्वास व रूढ़ियों का पूर्वाग्रही दुख ही पाता है ।

सत्य का आधार है विवेक

सत्य का अर्थ है यथार्थता । जो बात या कर्म वेद-शास्त्रों व सृष्टि क्रमानुसार व विज्ञानानुसार उसे उसी रूप में समझना, मानना और प्रयुक्त करना ही सत्य की साधना है । सत्य द्वारा विवेक जागता है।

हम अपनी दुर्बलता को मिटायें

हिन्दू समाज में जाति-पांति और छूआ-छूत की भावना ने बहुत ही विघटन पैदा कर दिया है । इस पृथकत्व के कारण हिन्दू समाज अपने को हिन्दू राष्ट्र समझने मे असफल रहा है । और इसी भेदभाव के कारण विदेशी भारत को गुलाम बनाने में सफल रहे और हजारों वर्षों तक भारत में राज्य करते रहे हैं । समाज में जाति-पांति, छुआ-छूत की दुर्बलता को मिटाना ही होगा और शुद्धि एकता का पुरजोर

प्रयास करना होगा ।

आर्य समाज संगठन द्वारा सर्वप्रथम शुद्धि आन्दोलन चलाया गया

महर्षि दयानन्द जी समानवाद के प्रबल समर्थक थे । उन्होने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में जाति-पांति व छुआ - छूत का कड़ा विरोध किया है । पश्चात् स्वनामधन्य स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शुद्धि आन्दोलन चलाया और लाखों हिन्दू विधर्मी हो रहे थे उन्हें पुन: हिन्दू धर्म में मिलाया । वह एक युग था शुद्धि आन्दोलन का किन्तु वर्तमान में धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र ने कानून बना दिया है कोई किसी का धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता है । इससे घातक हिन्दुओं के लिये और क्या हो सकता है । करोड़ों हिन्दू धर्म परिवर्तन करके ईसाई व मुसलमान बने हुए हैं । अब उनको हम वापिस अपने हिन्दू धर्म में वापिस नहीं ला सकते हैं ।

विधर्मी बने हिन्दुओं को वापिस लाने में बड़ी बाधा ऊंच-नीच प्रचलन

जो हिन्दू ईसाई या मुसलमान बने हैं वो अधिकांश हिन्दू समाज में घोर उपेक्षा का शिकार रहे हैं। यहां उनको अपमान और वहां उनको सम्मान मिलता है । यहां सामाजिक तिरस्कार, वहां उनको सामाजिक सत्कार । आखिर वैदिक धर्म अपनाने वाले भारत में ही हैं । यही कारण है आज हिन्दुओं को अल्पसंख्यक होने का खतरा मंडरा रहा है । स्वयं मैंने देखा है उत्तराखण्ड में एक-एक बोरी अनाज व बेटी की शादी में सहायता मिलने के लिए सतपुली गढ़वाल में लोग ईसाई बने हुए हैं । क्योंकि वे अति गरीबी के साथ-साथ सवर्णों द्वारा शोषित भी थे । आश्चर्य होता है जब सर्वरक्षक सर्वपालक ईश्वर भेद-भाव नहीं करता तो मनुष्य क्यों करता है ? क्या वे ईश्वर से भी बड़े हो गये हैं ?

आत्मनिवेदन

भारत के आर्य शिरोमणि व अन्य राष्ट्रवादी विचारशील मनीषियों को संगठित होकर इस उग्रवाद को जड़ से समाप्त करने का विचार करना अति आवश्यक हो गया है । मेरी समझ में यदि हम यूँ ही चलते रहे तो कल का भारत असुरक्षित हो जायेगा । क्योंकि उग्रवाद व राष्ट्र विरोधी ताकतें हमारे अपने ही भारत में भितरघात कर रहे हैं और पड़ोसी देश के इशारों पर उग्रवाद से भारत में अशान्ति फैला रहे हैं । उग्रवाद व देशद्रोह की जड़ें विगत तीन हजार वर्षों से जमी हुई है । बस देश काल परिस्थिति के अनुसार उसकी कार्यशैली बदल गई है । इस लेख में मेरे व्यक्तिगत विचार हैं, यदि आप सहमत हैं तो विचार कीजियेगा ।

वैदिक प्रचारक
गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून, उत्तराखण्ड ।
मो ० - 9411512019, 9557641800

यज्ञ शेष से शक्ति और शान्ति पावें

—डा० अशोक आर्य

हम जिन पदार्थों को भी पोषण के लिए अत्यधिक प्रयत्न करके प्राप्त करते हैं, वह सब प्रभु आदेश से ही पाते हैं । यह एक प्रकार से यज्ञ शेष है जिसे हम शान्ति तथा शक्ति स्थापना के लिए ग्रहण करते हैं । इस बात की ओर यह मन्त्र इस प्रकार संकेत कर रहा है :-

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम पूष्णो हस्ताभ्याम ।
अग्नये जुष्टं गृहणाम्यग्नेषोमाभ्यां जुष्टं गृहणामि ।। यजुर्वेद १.१० ।।

परम पिता परमात्मा जो सर्वज्ञ हैं, सबसे ऊपर हैं तथा जो कुछ भी हम देखते हैं वह सब उस प्रभु के कारण ही सम्भव है । वह प्रभु दयालु भी हैं । हम सब पर दया करते हैं । उस प्रभु की दया के कारण ही हमें सूर्य व चांद से प्रकाश मिलता है, जीवन के लिए जल व वायु भी हम प्राप्त करते हैं । प्रभु की दया के कारण ही हमें शक्तिवर्धक व आनन्द देने वाले वनस्पतियां, फल व फूल मिलते हैं । उस प्रभु ने हम पर दया करते हुए हमें कर्म करने में स्वतंत्र बनाया है किन्तु किये हुए कर्मों का फल उस प्रभु ने हम पर दया करते हुए अपने पास रख लिया है ताकि हम किसी पर भी अत्याचार न करें, निरंकुश होकर दूसरों को परेशान न करें ।

प्रभु के इन गुणों के कारण इस में कुछ भी अपूर्णता नहीं है तथा न ही इस कारण कुछ भी दुःखद है । इस का स्पष्ट कारण है कि वह प्रभु पूर्ण है । पूर्ण प्रभु जो भी काम करता है, वह सब भी पूर्ण ही होता है । इतना ही नहीं प्रभु की बनाई कोई भी वस्तु दुःख का कारण नहीं होती । पिता जो कुछ भी बनाता है, वह सब हमारी सुख सुविधाओं को बटाने के लिए होता है । इस कारण उस पिता की बनी कोई भी वस्तु हमारे लिए दुःखकारी नहीं होती । यदि कुछ दुःख कारक है भी तो उसका कारण हम स्वयं ही होते हैं । हम उस के प्रयोग में अथवा रख-रखाव में कुछ भूल कर देते हैं । दूसरे शब्दों में जीव अल्पज्ञ है और अपनी इस अल्पज्ञता के कारण अथवा व्यसनों के अधीन हम वस्तुओं का ठीक से प्रयोग नहीं कर पाते । इस कारण अनेक बार यह वस्तुएं हमारे लिए दुःख का कारण बनती हैं । इस कारण प्रभु भक्त पांच प्रकार के निर्णयों के आधार पर यह निश्चय करता है कि :-

१. मैं मध्यमार्गी बनूँ

प्रभु कहते हैं कि हे जीव ! मैंने तेरे लिए संसार के प्रत्येक पदार्थ को, प्रत्येक वस्तु को तेरे ग्रहण करने के लिए पैदा किया है । प्रभु उत्पादक है किन्तु उसने जो कुछ भी पैदा किया है, वह प्रभु स्वयं उसमें से कुछ भी उपभोग नहीं करता । जो कुछ भी पैदा करता है वह हम जीवों के उपभोग के लिए ही पैदा

करता है । परम पिता यह आदेश करते हैं कि हे जीव ! मैंने जो कुछ भी बनाया है वह तेरे लिए ही बनाया है किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि इन सब का प्रयोग करते हुए इनका प्रयोग अत्यधिक न हो, अकारण इन का प्रयोग न करे या दूसरों की हानि के लिए न हो अर्थात ठीक आवश्यकता के अनुसार हो । न तो अति हो तथा न ही अयोग, बस सब का प्रयोग यथायोग्य ही, संतुलित ही करना होगा । गीता ने भी पिता के इस आदेश पर ही अपने विचार दिये हैं कि हम युक्त आहार, विहार वाले रहते हुए सदा मध्य गार्ग पर ही चलें ।

२. पुरुषार्थ से ही कुछ ग्रहण करें :-

मानव जीवन के आधार दो साधन हैं । इन में से एक को प्राण कहते हैं तथा दूसरे को अपान कहते हैं । जब हम वायु को श्वास द्वारा अन्दर को लेते हैं तो यह प्राण है तथा जब इसे बाहर को छोड़ते हैं तो इस क्रम को अपान कहते हैं । मन्त्र कहता है कि प्राणापान द्वारा अर्थात मेहनत के द्वारा, पुरुषार्थ के द्वारा अपने बाहुओं से यत्न पूर्वक प्राप्त पदार्थ को ही हम ग्रहण करते हैं । प्रभु इस के माध्यम से स्पष्ट आदेश दे रहे हैं कि हम प्रतिदिन, सदा अत्यधिक मेहनत करें तथा उस वस्तु का ही हम अपने लिए उपभोग करें, जो इस पुरुषार्थ के परिणाम स्वरुप हमें प्राप्त होती है । यह मन्त्र पुरुषार्थी जीवन पर ही बल देता है ।

३. पोषण के लिए वस्तु ग्रहण करो :-

मन्त्र यहां कह रहा है कि हम किसी भी वस्तु को जीभ के स्वाद मात्र के लिए प्रयोग न करें । इस के साथ ही मन्त्र यह भी सन्देश, उपदेश व आदेश दे रहा है कि हम किसी भी वस्तु का प्रयोग अपने सौन्दर्य के लिए न करें । इस सब से अलग करते हुए यहां प्रभु आदेश दे रहे हैं कि हम जिस वस्तु का भी प्रयोग करें, उपभोग करें, उस का उपयोग अपने पोषण को बटाने के लिए होना चाहिये । इससे स्पष्ट होता है कि प्रभु न तो सौन्दर्य तथा न ही स्वाद को पसन्द करते हैं । इस सब से उत्तम पोषण शक्ति ही होती है । इसलिए प्रभु हमें केवल उस वस्तु का ही प्रयोग करने को कहते हैं, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए उतम हो, जो हमारी जीवनीय शक्ति को बढ़ाने वाली हो अथवा पोषक हो ।

४. यज्ञ-शेष रूपी अमृत को प्राप्त करें :-

परमपिता परमात्मा मन्त्र के इस अन्तिम भाग में इस प्रकार उपदेश कर रहे हैं कि हे जीव! तेरे अन्दर जो शक्ति है, उसे मैं अग्नि के नाम से जानता हूं, वह अग्नि ही है । अग्नि से युक्त वस्तु ही हमारी शक्ति को बढ़ाने वाली होती है । अग्नि गर्मी देती है । जब मानव शरीर से गर्मी समाप्त हो जाती है तो उसका जीवन समाप्त को ही ग्रहण कर जो अग्नि को बढ़ाने वाली हो । अग्नि ही यज्ञ का रूप है । परेपकार का ही नाम यज्ञ है, दूसरों की सहायता का नाम ही यज्ञ है । इसलिए प्रभु कहते

हैं कि अपनी प्रत्येक क्रिया को यज्ञ की भावना के अनुरुप बना कर ही करें । दूसरों के हित के लिए ही करे । इस प्रकार यज्ञ करने के पश्चात जो कुछ शेष बचता है, उसे यज्ञ शेष कहते हैं। प्रभु उपदेश कर रहे हैं कि हम केवल यज्ञ शेष का ही सेवन करे । दूसरों को खिलाने के बाद ही हम कुछ खावें, ग्रहण करे ।

यज्ञ शेष क्या है ?

प्रभु बताते हैं कि दूसरों को खिलाने के पश्चात जो शेष बच जाता है, उसे ही यज्ञ शेष कहते हैं । हवन करने के पश्चात् जो बचता है, उस घी व सामग्री को ही यज्ञ शेष कहते हैं । इस प्रकार का आहार हमारी पुष्टि का कारण होता है क्योंकि यह ही यज्ञ शेष होता है । यह ही यज्ञ का प्रसाद होता है । इस कारण यह अमृत है ।

५. अग्नि व सोम के लिए सेवित वस्तु ग्रहण करें :-

प्रभु उपदेश करते हैं कि हम उस वस्तु को ही ग्रहण करें जो अग्नि से अर्थात् तेज से, पुरुषार्थ से सेवित हो या यूं कहें कि जो अग्नि तथा सोम के लिए सेवित हों । अग्नि तेज को कहते हैं तथा सोम शरीर की विभिन्न शक्तियों को कहते हैं । जो वस्तु इन को बढ़ाने वाली हों, उनको ही ग्रहण करना उत्तम होता है । इसलिए पिता उपदेश करते हैं कि हम अग्नि और सोम को बढ़ाने वाली वस्तुओं का ही सेवन करें, उपभोग करें । मन्त्र बता रहा है कि हमारे जीवन के तत्वों में दो मुख्य तत्व हैं :- (क) अग्नि (ख) सोम । आयुर्वेद हमारे सब भोज्य पदार्थो को अर्थात् हमारे भोजन को दो भागों में बांटता है (अ) आग्नेय (आ) सौम्य । हमारे भोजन के जिस अंश को आग्नेय कहते हैं, यह हमें शक्ति देने वाला होता है । भोजन के जिस भाग को सोम्य कहते हैं, यह भाग न केवल हमें शान्ति ही देता है बल्कि दीर्घायु अर्थात् लम्बी आयु भी देने वाला होता है । स्पष्ट है कि लम्बी आयु उसको ही मिलती है जो शक्ति देने वाले अर्थात् आग्नेय पदार्थो से युक्त भोजन को करता है तथा शान्त रहता है । इसलिए प्रभु उपदेश करते हैं कि हे जीव ! तू ऐसा भोजन कर जिस में आग्नेय तथा सोम्य, यह दोनों तत्व ही उपयुक्त मात्रा में विद्यमान हों । जब तू ऐसा भोजन करेगा तो तेरा जीवन अनेक प्रकार के रसों से आनन्दों से भर जावेगा ।

लोअर आई पाकेट -१
प्लाट ६१/१, रायप्रस्थ ग्रीन,
सेक्टर - ७, वैशाली,
जिला - गजियाबाद (उ० प्र०)
चलवार्ता - 0971828068

गायत्री महामन्त्र

- पं० वेदप्रकाश शास्त्री

ओऽम भूर्भवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ —यजु० ३६/३

सर्वरक्षक 'ओम्' है जग को बचाता ।
'भूः' सत् स्वरूप है और प्राणदाता ॥
दुःख विनाशक 'भुवः' चिदानन्द है ।
'स्वः' सुख स्वरूप और सर्वानन्द है ॥
'सवितुः' सकल जगत् का है उत्पन्नकर्त्ता ।
'देवस्य' है दिव्यगुणों का वह धर्ता ॥
'तत् वरेण्यम्' उस श्रेष्ठ प्रभु का वरण करें ।
'भर्गः' पापनाशक ईश की हम शरण गहें ॥
'धीमहि' प्रभु को चित्त में हम धारण करें ।
प्रातः शाम नित्य उसी का गायन करें ॥
'यः' जो सवितादेव है 'नः' नित हमारी ।
'धियः' बुद्धियों का प्रेरक और निर्मलकारी ॥
'प्रचोदयात्' हमें सत्कर्म में वह प्रेरित करे ।
सन्मार्ग में चला कर 'वेद' नवजीवन भरे ॥

शास्त्री भवन
4-E, कैलाश नगर
फजिलका (पंजाब)
9463428299

''ईश्वर है एक, नाम अनेक''

—खुशहाल चन्द्र आर्य

यह लेख मैंने 'आर्य मान्यताएँ' शीर्षक पुस्तक जिसके सम्पादक आचार्य राजवीर जी शास्त्री हैं और प्रकाशक आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट है, उससे लिया है जो अति पठनीय है तथा पाठकों के लिए अति जानकारी का विषय है । पाठक गण इस लेख को पढ़कर काफी ज्ञान वर्द्धन करेंगे । इसी उद्देश्य से यह लेख लिखा है ।

ईश्वर एक है अनेक नहीं - वेद और वेदानुकूल सभी ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है । एक ईश्वर ही अनेक नामों से पुकारा जाता है । प्रत्येक नाम उसके किसी न किसी गुण को प्रकट करता है । जैसे-

ब्रह्म - सबसे बड़ा ।

ब्रह्मा - सब जगत् को बनाने वाला ।

शिव - कल्याण स्वरूप और कल्याण करने वाला ।

विष्णु - चर और अचर सब जगत् में व्यापक ।

रूद्र - दुष्ट कर्म करने वालों को दण्ड देकर रुलाने वाला ।

गणेश - सब का स्वामी और पालन करने वाला ।

पिता - सब को पालना और रक्षा करने वाला ।

देव - विद्वान् और विद्या आदि देने वाला ।

यम - सब प्राणियों को न्यायपूर्वक यथा योग्य कर्मफल देने वाला ।

भगवान् - ऐश्वर्यवान् ।

चन्द्र - आनन्द स्वरूप और सब को आनन्द देने वाला ।

ओऽम् - यह शब्द तीन अक्षरों अ, उ, म् से बना है । अ + उ = ओ । ओ और म् के बीच में लिखा ''३'' । ओम् के उच्चारण को लम्बा करने का निर्देश देता है ।

अ - विराट्, अग्नि, विश्व आदि ।

उ - हिरण्यगर्भ, तैजस, वायु आदि ।

म् - ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि ।

विराट् - जो बहुत प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे ।

अग्नि - ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ ।

विश्व - जो आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में प्रविष्ट हुआ है ।

हिरण्यगर्भ : जो सूर्य आदि तेज वाले पदार्थ का उत्पत्ति तथा निवास स्थान है।

वायु - जो सब चराचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता है।

तैजस - जो स्वयं प्रकाश स्वरूप तथा सूर्य आदि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करने वाला है।

ईश्वर - सामर्थ्यवान्।

आदित्य - जिसका विनाश कभी न हो।

प्राज्ञ - जो सब चराचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है।

ईश्वर के सब नामों में ''ओ३म्'' सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इससे उसके सबसे अधिक गुण प्रकट होते हैं। यही ईश्वर का प्रधान और निज नाम है। अन्य सभी नाम गौण हैं।

ओ३म् खं ब्रह्मा (यजुर्वेद ४०, १७)

अर्थ - आकाश के समान व्यापक, सबसे बड़ा, सब जगत् का रक्षक ओ३म् है।

ओ३म् क्रतोस्मर। (यजुर्वेद)

अर्थ:- ऐ कर्मशील मनुष्य ! ओ३म् को याद रख।

ओम् इति एतद् अक्षरम् उद्गोधम् उपासीत:। (छान्दोग्योपनिषद्)

अर्थ - ओ३म् जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करनी योग्य है, और किसी की नहीं।

ओम् इति एतद् अक्षरम् इदम् सर्वतस्य उपव्याख्यानम्। (माण्डूक्योपनिषद)

अर्थ: - वेदादि सब शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ''ओम्'' को कहा गया है।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ओम् इति एतत्।। (कठोपनिषद्)

अर्थ:- सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसे जानने के लिए सब तप किए जाते हैं, जिसकी चाहना में यति लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद संक्षेप में तुझे बताता हूँ, वह पद ''ओम्'' है।

इन मन्त्रों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईश्वर का मुख्य और निज नाम ''ओ३म्'' है। अन्य नामों को छोड़ कर ''ओ३म्'' की ही उपासना करनी चाहिए।

गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स
180, महात्मा गान्धी रोड (दो तल्ला),
कोलकात्ता - 700007
9830135794/2218-3825 (033)

आर्य समाज कलकत्ता के प्रकाशन

पुस्तक विक्रेता, आर्य संस्थाओं, उपदेशकों को ४० प्रतिशत की छूट दी जाती है।

	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	मूल्य
१.	युग निर्माता सत्यार्थ प्रकाश-संदर्भ दर्पण (ऐतिहासिक संदर्भ में सत्यार्थ प्रकाश की यात्रा का दस्तावेज)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
२.	स्वामी दयानन्द का राजनीति दर्शन (स्वामी दयानन्द के राजनीत दर्शन का समीक्षात्मक अध्ययन)	डॉ० लाल साहेब सिंह	५०.००
३.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज की देन (उन्नीस उत्कृष्ट निबंधों का संग्रह)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय द्वारा सम्पादित	१५.००
४.	त्रैतवाद का उद्भव और विकास (त्रैतवाद का उसके उद्भव और विकास के वैशिष्ट्य को स्पष्ट करने वाला दर्शन का शोधपूर्ण ग्रंथ)	डॉ० योगेन्द्र कुमार शास्त्री	२०.००
५.	उपनिषद् रहस्य (ईश केन और प्रश्न उपनिषदों की सारगर्भित व्याख्या)	महात्मा नारायण स्वामी ''सरस्वती''	२०.००
६.	श्री श्री दयानन्द चरित	श्री सत्यबन्धु दास	१०.००
७.	महर्षि दयानन्द की देन (निबन्धों का संग्रह)	आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित	३०.००
८.	धर्मवीर पं० लेखराम	स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती	५०.००
९.	आनन्द संग्रह (स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज के उपदेशामृत)	वीतराग स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज	२५.००
१०.	भाई परमानन्द (बलिदानी वंश के कुलदीपक की अमर कहानी)	श्री बनारसी सिंह	१०.००
११.	धर्म का आदि स्रोत	पं० गंगाप्रसाद जी	३०.००
१२.	संकल्प सिद्धि (विचारों के संकल्प विकल्प का अनोखा चिन्तन)	स्वामी ज्ञानाश्रम	३०.००
१३.	ज्योतिर्मय (श्रीयुत् टी. एल. वास्वानी द्वारा लिखित (Torch Bearer) का हिन्दी अनुवाद	टी.एल. वास्वानी	३०.००
१४.	वेद-वैभव	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१५०.००
१५.	कर्मकाण्ड	प० योगेशराज उपाध्याय द्वारा सम्पादित	१०.००
१६.	स्वतंत्रता संग्राम में आर्य समाज का योगदान	ले० सत्यप्रिय शास्त्री	५०.००
१७.	आर्यसमाज कलकत्ता का इतिहास	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	८०.००
१८.	मेरे पिता	पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति	५०.००
१९.	वेद और स्वामी दयानन्द	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२०.	व्यतीत के यश की धरोहर (महासम्मेलनों के संस्मरणात्मक आकलन)	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	६०.००
२१.	Torch Bearer	टी० एल० वास्वानी	३५.००
२२.	पं० गुरुदत्त लेखावली	मुनिवर पं० गुरुदत्तजी 'विद्यार्थी'	२५.००
२३.	प्रार्थना प्रवचन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५०.००
२४.	सन्ध्यारहस्य एवं संन्ध्या अष्टांग योग	प्रो० चमूपति एवं स्व० आत्मानन्द (एक जिल्द)	३०.००
२५.	बंगाल में शास्त्रार्थ	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	४०.००
२६.	वेद में गोरक्षा या गोवध	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	५.००
२७.	वेद रहस्य	महात्मा नारायण स्वामी जी	३५.००
२८.	वेद वन्दन	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००
२९.	राजप्रजाधर्म प्रबोध भाष्य	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७०.००
३०.	वेद-वीथिका	प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	१६०.००

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल द्वारा प्रकाशित तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित।